भारतीय रंगमंच के परिवेश में संगीत योजना

डॉ० किन्शुक श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत (गायन)
वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

सुयंका गुप्ता
शोध छात्रा
वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

संगीतदर्पण में संगीत की परिभाषा यह की गयी है–
'गीतं, वाद्यं नर्तन च, त्रयं संगीतमुच्यते।'

अर्थात् गीत या गाना, वाद्य और नर्तन तीनों को मिलाकर संगीत कहते है। कुछ का कहना है कि इन तीनों को मिलाकर संगीत होता है, कुछ इनमें से प्रत्येक को संगीत समझते हैं, किन्तु वास्तव में तीनों के समाहार को संगीत कहते हैं। इनमें से नृत्य तो वाद्य के सहारे चलता है और वाद्य गीत के सहारे चलता है, अतः इन तीनों में मुख्य गीत ही है।

संगीतदर्पणकार ने संगीत को दो भागों में विभक्त किया है– मार्ग और देशी। जिस संगीत का प्रदर्शन ब्रह्मा के निर्देश से भरत ने महादेवीजी के सामने किया था और जो मोक्ष देने वाला है, वह मार्ग–संगीत है और विभिन्न देशों में विभिन्न रीतियों के अनुसार लोकरंजन के लिए जिस संगीत की योजना की जाती है, उसे देशी कहते है।

प्राचीन काल में सामवेद को उद्गाता लोग वैदिक यज्ञों के समय गाया करते थे। उसका उपवेद भी गान्धर्ववेद कहलाता है, जिसमें संगीत का पूरा विवरण दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त वेदों में भी नृत्त और गीत की योजना का प्रमाण मिलता है और वह परिपाटी आज तक ज्यों की त्यों चली आ रही है। रामायण, महाभारत और पुराणों में विस्तार से स्थान–स्थान पर गीत, नृत्य, नाटक, शैलूष, नर्तक, कुशीलव, मागध, नट, नान्दीपाठ, वन्दी, गायक, सौख्यसाक्षिक, वैतालिक, कथक, ग्रन्थिक, गाथी और सूत आदि संगीत–व्यवसायियों का उल्लेख मिलता है। देवताओं की सभाओं में तो गन्धर्व तथा अप्सराओं द्वारा देवताओं के मनोरंजन के लिए नृत्य, गीत और नाट्य के आयोजन का उल्लेख मिलता ही है।

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में संगीत की स्वर–विधि का निम्नांकित क्रम रखा है–
(अ) स्वर–संज्ञाएँ।
(आ) वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी के रूप में चतुर्विध स्वर या उनके चतुर्विध सम्बंध।
(इ) वादी, संवादी का लक्षण।
(ई) मध्यम ग्राम में पंचम–ऋषभ तथा षड्ज ग्राम में षड्ज–पंचम के पारस्परिक संवाद को प्रतिपादित करने वाला श्लोक।
(उ) विवादी एवं अनुवादी का लक्षण एवं कुछ उदाहरण।
(ऊ) वादी, संवादी, अनुवादी एवं विवादी संज्ञाओं की अनिवार्यता।
(ए) षड्ज ग्राम के स्वरों की स्थापना का ज्ञान कराने वाला श्लोक, जिसमें षड्ज ग्राम में श्रुति–निदर्शन बताया गया है और जिसके रहस्य से परिचित होने पर मध्यम ग्राम के स्वरों का भी ज्ञान हो जाता है।

(ऐ) षड्ज ग्राम एवं मध्यम ग्राम से परिचित व्यक्ति के लिए एक स्थान में श्रुतिसंख्या एवं श्रुति–परिमाणों की प्राप्ति का उपाय–चतुःसारणा।

(ओ) दोनों ग्रामों में स्वरों की संख्या का स्मरण रखने के लिए संग्रह– लोक, जिनमें, 'चतुःसारणा' का निष्कर्ष पद्यबद्ध है।1

भारतीय आचार्यों ने नाटक को दृश्य–काव्य की संज्ञा प्रदान की है। नाटक को रंगमंच पर प्रदर्शित किये जाने पर ही उसकी सार्थकता होती है। रंगमंच पर उपस्थित किये जाने पर नाटक वाणी के वर्चस्व के साथ स्वयं को प्रभावपूर्ण बनाने हेतु गायन, वादन आदि का भी आश्रय लेता है। आचार्य भरत की मान्यता है कि नाटक में संवाद, गायन और वादन अलात् चक्र की भाँति परस्पर समन्वित होने चाहिये। नाटक के अभिव्यंजना विधान में गायन और वादन को आधार भूमि स्वीकारा गया है जिस पर रचना का पूरा विधान निर्भर होता है। आचार्य भरत ने नृत्य को नाटक का शोभादायक धर्म स्वीकार है परन्तु यह शोभा का विधान नाटक की मूल भाव धारा को दृष्टि में रखते हुये ही होना चाहिये। उन्होंने नाटक का मूल संयोजन रसनिष्पत्ति अर्थात् सामाजिक को भाव–विशेष में विभोर करना माना है।2

नाटक में गद्य–संवाद के अतिरिक्त प्राचीन नाटककारों ने पद्य का भी प्रयोग किया है। यद्यपि आजकल नाटकीय संवाद में पद्य के प्रयोग को अस्वाभाविक और अयुक्त माना गया है किन्तु नाटककार को यह स्वतन्त्रता है कि वह ऐसे पात्रों की योजना करे जो कविता में ही वार्तालाप करते हों, या कवियों का उद्धरण देते हों, जैसे– अभिनवनाट्यशास्त्र में "मंगल प्रभात" नाटक में मेघराज कवि की सृष्टि करके उसका प्रयोग किया है।3

नाट्य–शास्त्र में लगभग छः–सात अध्यायों (28–34) में नाट्य–प्रयोग की सिद्धि के लिए गीत–वाद्य के महत्व का विस्तृत

विवेचन किया गया है। 'पूर्वरंग' का आरंभ गीत–नृत्य के साथ होता है। नाट्य–प्रयोग के मध्य में भी गीत का प्रयोग होता है। गीत–वाद्य नाट्य–प्रयोग में अलातचक्र की तरह मिले रहते है। गीत का प्रयोग भाव–रस के प्रकाशन के लिये होता है। गीत–वाद्य विधान के संबंध में भरतमुनि ने पूर्ववर्ती संगीताचार्यों–स्वाति, नारद, तुंबरू आदि– का उल्लेख किया है।6 भरत ने उनका आकलन कर शास्त्रीय रूप देते हुए उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। उन्होनें सप्तस्वर, रसानुसार स्वर योजना, वर्ण और अलंकार, ताल–लय और यति की महत्ता, ध्रुवा का स्वरूप और भेद, वाद्य के प्रकार तथा उनका तालाश्रित प्रयोग आदि विषयों का विवेचन किया है।7 गायक–वादकों की आसन–व्यवस्था तीनों प्रकार के नाट्य–मंडपों में रंग ीर्ष तथा रंगपीठ के द्वारों के मध्य होती थी।8 भरत मुनि की दृष्टि से गीत–वाद्य नाट्य की शैय्या हैं, इनका समुचित प्रयोग होने पर नाट्य–प्रयोग विपत्ति–ग्रस्त नहीं होता है।9

संस्कृत तथा प्राकृत नाटकों में गीतों का प्रयोग हुआ। कालिदास के तीनों नाटकों में गीतों का विधान किया गया है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम' के आरंभ में ग्रीष्मऋतु का गीत नटी गाती है, हंसपदिका के गायन का संकेत है।10

लोक–नाट्य परम्परा का यह क्षेत्र विशेष रूप से बना होता है। रंगशाला में गायकों और वाद्यकारों की मंडली के स्थान की विशेष महत्ता है; क्योंकि पर्दों और औपचारिक दृश्य–परिवर्तन के अभाव में गीत और वाद्यवादन ही कथा–सूत्र को श्रृखंलाबद्ध करते हैं तथा प्रसंगों के बीच कालावधि में पूरक का काम करते हैं।11

पारसी–नाटकों में नृत्यगीत की योजना भी अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण है। मंगलाचरण शास्त्रीय संगीत के साथ गाया जाता था। नायक–नायिका के गीतों में लोकधुनों तथा शास्त्रीय रागों का मिश्रण होता था। वाद्य–वादक हारमोनिम, वायलिन, क्लारनेट आदि बजाने वाले– पाश्चात्य ऑपेरा साजिंदों की भांति पाद–प्रकाश के आगे गहरी सी जगह में बैठते थे।

आधुनिक हिन्दी–नाट्य–साहित्य में भी गीतों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। भारतेन्दु के नाटकों में भक्ति, श्रृंगार तथा देशभक्ति से पूर्ण सुंदर गीतों का समावेश है। प्रसाद के नाटकों का गीत–वैविध्य तो स्वतः ही अध्ययन का विषय है। इनके नाटकों में अनेक उत्तम छायावादी गीतों की सृष्टि हुई है।

पश्चिमी रंगमंच पर तो आरंभ से ही वृंदगान (कोरस) का प्रचलन था। ऑपेरा तो पूर्णतः गीतपरक नाट्य था।12 शेक्सपियर के पात्र भी भावावेग की अवस्था में सुंदर गीत गाते है। कभी–कभी इन गीतों के माध्यम से नाट्य–व्यंग्य का सुंदर उपयोग किया गया है।

आधुनिक नाटक में नेपथ्य–संगीत का विशेष महत्व है। टेप रिकार्ड किया गया संगीत प्रभाव आज बहुत ही महत्वपूर्ण बन गया है। वातावरण का निर्माण करने, अवसरानुकूल वाद्य–संगीत संवादों की पृष्ठभूमि में तथा करूण, शांत, वीर, श्रृंगार आदि रसों की निष्पत्ति में नेपथ्य–संगीत तथा पृष्ठभूमि संगीत अत्यधिक उपयोगी होता है।

नवीन दृश्य–विधान में जहां दृश्य–परिवर्तन तथा अंक–परिवर्तन के समय परदा गिराने–उठाने का प्रचलन समाप्त कर दिया गया है, एक दृश्य से दूसरे दृश्य के बीच के अंतराल में कुछ पलों के लिए संगीत–प्रभाव का प्रयोग कर मनोहारी वातावरण की सृष्टि की जाती है।

रंगमंच पर घटित अवसर के अनुकूल ही संगीत योजना होनी चाहिए। संगीत की अपनी भाषा है, अपने संकेत हैं। संगीत के स्वरों से दर्शक उस राग के अनुरूप हर्ष–विषाद के प्रसंगों को दृश्य रूप में रंगमंच पर देखने के लिये सहज ही सिद्ध होते हैं। नाटककार का नाटक रंगमंच पर दिग्दर्शक प्रस्तुत करता है उसका बहुश्रुत होना अनिवार्य है। स्थापत्य, संगीत, चित्र, नृत्य, अभिनय, वेशभूषा, इतिहास, भाषा आदि सभी शाखों के मूलभूत सिद्धांत का ज्ञान दिग्दर्शक को होना चाहिए। रंगमंच पर प्रस्तुत नाटक एक सामूहिक कला है। रंगमंच की अपनी भाषा होती है। रंगमंच के दृश्यबंध (स्टेज सैटिंग) की, रंगभूषा की, वेशभूषा की, प्रकाश–योजना और संगीत की। मंचीय नाटक में नाटककार के शब्दों की भाषा से भी अधिक प्रभावशाली भाषा अभिनय की होती है। पाठ्य तथा श्राव्य काव्य की अपेक्षा मंचीय नाटक के लिये अधिक प्रयत्न, परिश्रम, बुद्धि, ज्ञान, सहयोग अपेक्षित है। जिस प्रकार जीवन में सुसंगति आवश्यक है, उसी प्रकार रंगमंच पर नाटक व्यवस्था तथा उसकी प्रस्तुति में सुसंगति आवश्यक है। रंगमंच पर जब नाटक खेला जाता है तब अभिनय करने वाले अभिनेता, नाटककार के नाट्य लेखन का कथ्य अथवा भाव, मंचीय दृश्य, प्रकाश, संगीत, अभिनेता की रंगभूषा, वेशभूषा आदि मंचीय नाटक के सभी अंग एक–दूसरे में ऐसे गुंथे हुए होने चाहिए कि उन कलाओं का स्वतंत्र अस्तित्व न हो अपितु उनके उचित यथा संभव मिलाप से नाट्यकला का निर्माण हो और उसका रसास्वादन सहृदय, संवेदनशील दर्शक समुदाय करें।13

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि चाहे शास्त्रीय–संगीत हो चाहे उप ाास्त्रीय–संगीत या फिर लोक–संगीत हो सभी में रसानुभूति एवं संगीत सौन्दर्य–वर्धन में वाद्यों की सशक्त भूमिका होती है। एकल–वादन, संगत–वादन, वृन्द–वादन अथवा पार्श्व–संगीत के रूप में कण्ठ–संगीत, नृत्य, नृत्य–नाटिका, नाट्य आदि के साथ विभिन्न वाद्यों का वादन किसी–न–किसी तरह से संगीत–सौन्दर्य के सिद्धांतों, मर्यादाओं, संगीत्मक–तत्वों के संमिश्रण, संतुलन, संवाद एवं विवाद आदि की एकरूपता को बनाये रखने में जो योगदान देता है वह संगीतात्मक–तरलता, ह्रदयग्राहता, मनमोहकता, रंजकता एवं रसात्मकता एवं भावात्मकता के आधार पर अति महत्वपूर्ण है। वाद्यों के विभिन्न प्रयोगों के आधार पर एवं ऐतिहासिक दृष्टि से तथा उनके काल क्रमानुसार विकास के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही वाद्यों का भारतीय संगीत में एक महत्वपूर्ण स्थान एवं उपयोगिता रही है, जिससे संगीत में विभिन्न भावों एवं रसों की अनुभूति हो पाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:–

1. भारतीय तथा पा चात्य रंगमच, सीताराम चतुर्वेदी, हिन्दी समिति सूचना विभाग लखनऊ, Page no. 645-646

2. नाट्यशास्त्र का वैदिक आधार, डॉ. नीहारिका चतुर्वेदी, नाग पब्लिशर्स दिल्ली, Page no. 133
3. अभि. ना. शा., पं. सीताराम चतुर्वेदी, Page no. 496
4. रंगमंच, बलवंत गार्गी, ब्रेख्ट का थियेटर, Page no. 261
5. रंगमंच: नया परिदृश्य, डॉ. रीतारानी पालीवाल, लिपि प्रकाशन नईदिल्ली, Page no. 68
6. ना0शा0 5 / 158–60.
7. रंगमंच: नया परिदृश्य, डॉ. रीतारानी पालीवाल, लिपि प्रकाशन नईदिल्ली, Page no. 68
8. ना0शा0 28 / 1–15.
9. वही, Page no. 34
10. अभिज्ञानशाकुंतलम्, 1 / 3, 1 / 4
11. रंगमंच: नया परिदृश्य, डॉ. रीतारानी पालीवाल, लिपि प्रकाशन नईदिल्ली, Page no. 69
12. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, डा0 जगन्नाथप्रसाद भार्मा, Page no. 274
13. हिन्दी नाटक और रंगमंच, राजमल बोरा और नारायण शर्मा, पंचशील प्रकाशन जयपुर, Page no.90